॥ॐ॥
॥श्री परमात्मने नमः ॥
॥श्री गणेशाय नमः॥

॥ श्री विष्णु स्मृतिः ॥

श्री प्रभु के चरणकमलों में समर्पित:

श्री मनीष त्यागी
संस्थापक एवं अध्यक्ष
श्री हिंदू धर्म वैदिक एजुकेशन फाउंडेशन

॥ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

विषय अनुक्रमणिका

प्रथमोऽध्यायः प्रथम अध्याय..... 3
द्वितीयोऽध्यायः दूसरा अध्याय..... 11
तृतीयोऽध्यायः तीसरा अध्याय..... 16
`चतुर्थोऽध्यायः चौथा अध्याय..... 21
पंचमोऽध्यायः पांचवां अध्याय..... 30

॥ॐ॥
॥श्री परमात्मने नमः ॥
॥श्री गणेशाय नमः॥

श्री विष्णु स्मृतिः

प्रथमोऽध्यायः प्रथम अध्याय

अथ विष्णुप्रोक्तधर्मशास्त्रप्रारंभः ॥

विष्णुमेकाग्रमासीनं श्रुतिस्मृतिविशारदम् ॥
पप्रच्छर्मुनयः सर्वे कलापग्रामवासिनः ॥ १॥

एकाग्र चित्त से बैठेहुए श्रुति और स्मृतियों के जाननेवाले विष्णुजी से कलापग्राम के निवासी सम्पूर्ण मुनियोंने यह पूछा ॥ १॥

कृते युगे ह्यपक्षीणे लुप्तो धर्मस्सनातनः ॥
तत्र वै शीर्यमाणे च धर्मो न प्रतिमार्गितः ॥ २ ॥

कि सतयुग के बीत जाने पर सनातन धर्म का लोप हो गया, और उसके बीतने पर किसी ने धर्म का शोधन नहीं किया ॥२॥

त्रेतायुगेऽथ संप्राप्ते कर्तव्यश्चात्य संग्रहः ॥
यथा संप्राप्यतेऽ स्माभिस्तत्त्वन्नो वक्तुमर्हसि ॥३॥

इस समय धर्म का संग्रह अवश्य करना उचित है, कारण कि अब त्रेतायुग वर्तमान है, जिस रीति से वह धर्म हमको प्राप्त हो जाय, वह रीति आप हमसे कहिये ॥ ३ ॥

वर्णाश्रमाणां यो धर्मो विशेषश्चैव यः कृतः ॥
भेदस्तथैव चैषां यस्तन्नो ब्रूहि द्विजोत्तम ॥४॥

हे द्विजों मे श्रेष्ठ ! वर्ण और आश्रमों का धर्म वथा इनके घर्मों की विशेषता ऋषियों ने की है, अथवा परस्परके धर्म का भेद, यह आप सब हमसे कहो ॥ ४ ॥

ऋषीणां समवेतानां त्वमेव परमो मतः ॥
धर्मस्येह समस्तस्य नान्यो वक्तास्ति सुव्रत ॥५॥

यहाँ पर जितने ऋषि एकत्रित हुए हैं, उन सबमें तुम्ही श्रेष्ठ माने गये हो, हे सुव्रत! इस कारण तुम्हारे अतिरिक्त सम्पूर्ण धर्मका वक्ता दूसरा नहीं है ॥ ५ ॥

श्रुत्वा धर्म चरिष्यामो यथावत्परिभाषितम् ॥
तस्माद्ब्रूहि द्विजश्रेष्ठ धर्मकामा इमे द्विजाः॥६॥

आपके कहे हुए धर्म को सुनकर उसी के अनुसार हम सब आचरण करेंगे, यह सभी ब्राह्मण धर्मके श्रवण करनेकी अभिलाषा कर रहे हैं, इसकारण हे द्विजोंमें उत्तम! आप धर्मका वर्णन कीजिये ॥ ६ ॥

इत्युक्तो मुनिभिस्तैस्तु विष्णुः प्रोवाच तांस्तदा ।

अनघाः श्रूयतां धर्मो वक्ष्य माणो मया कमात् ॥ ७॥

मुनियों के इसप्रकार कहने पर उस समय विष्णुजी बोले कि, हे पापरहितों! मैं जिस धर्म को क्रमानुसार कहूँगा उसको आप सब श्रवण करो ॥ ७ ॥

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूदश्चैव तथा परे ॥
एते षां धर्मसारं यक्ष्यमाणं निबोधत ॥ ८ ॥

ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शुद्ध तथा इतर (प्रविलोम सङ्कर अन्त्यजादिक) इतने वर्ण लोक में वर्तमान हैं, मेरे कहे हए इन्हीं के धर्म के अनुसार धर्म को आप सुनो ॥ ८ ॥

ऋत्तावृतौ तु संयोगाद्वब्राह्मणो जायते स्वयम् ॥
तस्माद्राह्मणसंस्कारं गर्भादौ तु प्रयोजयेत् ॥ ९॥

ऋतु अर्थात रजोदर्शनसे सोलह दिनके भीतर में स्त्री और पुरुष के संयोग से ब्राह्मण उत्पन्न होते हैं, इसी निमित्त ब्राह्मणका संस्कार गर्भ से लेकर करे यह प्रथम संस्कार गर्भ का है ॥९॥

सीमंतोन्नयनं कर्म न स्त्रीसंस्कार इष्यते ॥
गर्भस्यैव तु संस्कारो गर्भेगर्भे प्रयोजयेत् ॥ १० ॥

सीमंत कर्म स्त्री संस्कार नहीं है, परन्तु गर्भ का ही है, इस कारण प्रतिगर्भ में सीमंत संस्कार करे ॥ १० ॥

जातकर्म तथा कुर्यात्पुत्रे जाते यथोदितम् ।

वहिर्नीष्क्रमणं चैव तस्य कुर्याच्छिशोःशुभम् ॥२१॥

पुत्रके उत्पन्न होनेपर वेद शास्त्र के अनुसार जातकर्म कर इसके पीछे इस बालक का मंगल सहित बहिनिष्क्रमण करना अर्थात घर से बाहर ले जाना चाहिए ॥ ११ ॥

षष्ठे मासे च संप्राप्त अन्नप्राशनमाचरेत् ।
तृतीयादे च संप्राप्ते केशकर्म समाचरेत् ॥ १२ ॥

जब छह महीने का बालक हो जाए तब उसका अन्नप्राशन करे और जब तीन वर्ष का हो जाय तब केशकर्म करें ॥१२॥

गर्भाष्टमे तथा कर्म ब्राह्मणस्योपनायनम् ॥
दिजत्वे त्वथःसंप्राप्ते सावित्र्यमधि कारभाव ॥ १३ ॥

ब्राह्मण का गर्भ से लगाकर आठवें वर्ष यज्ञोपवीत करे; कारण कि ब्राह्मण होने पर ही गायत्री का अधिकारी होता है ॥१३॥

गर्भादेकादशे सैके कुर्यात्क्षत्रियवैश्ययोः ॥
कारयेद्विजकर्माणि बाह्मणेन यथाक्रमम् ॥ १४ ॥

क्षत्रि यका यज्ञोपवीत गर्भ से लगाकर ग्यारहवें वर्ष में करें; और वैश्य का यज्ञोपवीत बारहवें वर्ष में करना उचित है ॥ १४ ॥

शदश्चतुर्थो वर्णस्तु सर्वसंस्कारवर्जितः ॥
उक्तस्तस्य तु संस्कारो द्विजे स्वात्मनिवेदनम् ॥ १५ ॥

और चौथा शूद्रवर्ण सम्पूर्ण संस्कारों से हीन है; उसका संस्कार केवल यही कहा है कि वह तीनों वर्गों को आत्मसमर्पण करे; अर्थात् उनकी सेवा भली भांति से करता रहे ॥ १५ ॥

यो यस्य विहितो दंडो मेखलाजिनधारणम् ॥
सूत्रं वस्त्रं च गृहीयाब्रह्मचर्येण यंत्रितः ॥ १६ ॥

ब्रह्मचर्य में जिस वर्ण का जो जो दंड, मेखला, मृगछाला, सूत्र, यज्ञोपवीत जनेऊ, वन, अन्यत्र कहे हैं, उसको नियमसहित धारण करें ॥१६॥

ब्राह्मे मुहूर्त उत्थाय चोपस्पृश्य पयस्तथा ॥
त्रिरायम्य ततः प्राणांस्तिष्ठेन्मौनी समाहितः ॥१७॥

ब्राह्म मुहूर्त में उठकर शुद्ध जल से तीन बार आचमन और प्राणायाम करके सावधान होकर मौन धारण कर बैठे ॥ १७ ॥

अव्दै वतैः पवित्रैस्तु कृत्वात्मपरिमार्जनम् ॥
सावित्री च जपंस्तिष्ठेदा सूर्योदयनात्पुरा ॥१८॥

अप (जल) देवता है[1] ऐसे मंत्रों से देह का मार्जन कर, पूर्वमुख होकर सूर्योदय तक गायत्री का जप करता हुआ बैठा रहे ॥ १८ ॥

अग्निकार्य ततः कुर्यात्मातरेव व्रतं चरेत् ॥
गुरवे तु ततः कुर्यात्पादयोरभिवा दनम् ॥१९॥

[1] आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन।महे रणाय चक्षसे ॥

इसके बाद अग्निहोत्र करे, और प्रातःकाल के समय ही व्रत करे, इसके उपरान्त गुरुके चरणों में प्रणाम करे ॥१९॥

समित्कुशांश्चोदकुंभमाहृत्य गुरवे व्रती ॥
प्रांजलिः सम्यगा सीन उपस्थाय यतः सदा ॥२०॥

समिधा, कुशा, और जल का घडा गुरुके लिये लाकर हाथ जोड भलीभाँति जितेन्द्रिय होकर गुरु के सन्मुख बैठ कर गुरु की स्तुति करके सावधानी से रहा करे, इस प्रकार से सर्वदा नियम पालन करे ॥२०॥

यंयं ग्रंथमधीयीत तस्यतस्य व्रतं चरेत् ॥
सावित्र्युपक्रमात्सर्वमावेदग्रहणोत्तरम् ॥ २१॥

जिस ग्रन्थ को पढे उसी ग्रन्थ का व्रत करे; और गायत्री के उपदेश से सम्पूर्ण वेद के पठनपर्यन्त ॥२१॥

द्विजातिषु चरेक्ष्यं मिक्षाकाले समागते ॥
निवेद्य गुरवेश्नीयात्संमतो गुरुणा व्रती ॥ २२ ॥

तीनों द्विजातियों में भिक्षा के समय भिक्षाटन करे, उस भिक्षा को गुरु देव को निवेदन करके गुरु की सम्मति से ब्रह्मचारी भोजन करें ॥२२॥

सायंसन्ध्यामुपासीनो गायत्र्यष्टशतं जपेत् ॥
द्विकालभोजनार्थ च तथैव पुनराहरेत् ॥ २३ ॥

सायंकाल की संध्या करने समय अष्टोत्तरशत गायत्रीका जप करें और सायंकाल को भोजन लिये उसी भांति भिक्षा के निमित्त जाए ॥२३॥

वेदस्वीकरणे हृष्टो गुर्वधीनो गुरोर्हितः ॥
निष्ठां तत्रैव यो गच्छेन्नैष्ठीकस्य उदाहृतः ॥२४॥

जो ब्रह्मचारी वेद पढने में प्रसन्न और गुरु के आधीन तथा गुरु का हितकारी होता है; और जो मृत्युकाल तक गुरु के यहांही निवास करता है उसी को नैष्टिक ब्रह्मचारी कहते हैं ॥२४॥

अनेन विधिना सम्यक्कृत्वा वेदमधीत्य च ॥
गृहस्थधर्ममाकांक्षन्गुरुगहादुषागतः ॥२५॥

इस प्रकार से ब्रह्मचर्य धर्म को करके वेद को पढ कर गुरुदेव के घरसे आकर गृहस्थ धर्म की आकांक्षा करे ॥२५॥

अननैव विधानेन कुर्याद्वारपरिग्रहम् ॥
कुले महति सम्भूतां सवर्णा लक्षणान्विताम् ॥२६॥

शास्त्र की विधि अनुसार इसी प्रकार स्त्री का पाणिग्रहण करे, उच्च कुल में उत्पन्न हुई सजातीय सुलक्षणा स्त्री का ॥२६॥

परिणीय तु षण्मासान्वत्सरं वा न संविशेत् ॥
औदुंबरायणो नाम ब्रह्मचारी गहेगृहे ॥२७॥

विवाह करके जो छ: महीने अथवा एक वर्ष तक स्त्री का संग नहीं करता है, उस घर ब्रह्मचारी को घर घर में औदुंबरायण नाम से पुकारते हैं ॥२७॥

ऋतुकाले तु संप्राप्ते पुत्रार्थी संविशेत्तदा ॥
जाते पुत्रे तथा कुर्याद्ग्न्याधेयं गृहे वसन ॥२८॥

जिस समय स्त्री ऋतुमती हो तो पुत्र की इच्छा से स्त्री का संसर्ग कर; पुत्र के उत्पन्न हो जाने पर घर में रहता हुआ भी अग्निहोत्र ग्रहण करे ॥२८॥

पुत्रे जातेऽनृतौ गच्छन्सप्रदुष्येत्सदा गृही॥
चतुर्यें ब्रह्मचारी च गृहे तिष्ठत्र विस्मृतः ॥ २९ ॥

पुत्र उत्पन्न होनेके पीछे स्त्री को बिना ऋतु हुए स्त्रीसंग करनेसे गृहस्थी दोषी होता है; और चौथे पुत्र होनेपर गृहस्थी हो के भी जान बूझकर ब्रह्मचर्य ही रखें ॥ २९ ॥

इति वैष्णवधर्मशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

वैष्णवधर्मशास्त्र का प्रथम अध्याय पूरा हुआ

द्वितीयोऽध्यायः दूसरा अध्याय

अतः परं प्रवक्ष्यामि गृहिणां धर्ममुत्तमम् ।।
प्राजापत्यपदस्थानं सम्यककृत्यं निबोधत ॥ १ ॥

अब मैं इसके आगे गृहस्थियों के उत्तम धर्म को कहता हूँ, ब्रह्मलोक के स्थान के दाता इस धर्म को भलीभांति सुनें ॥१॥

सर्वः कल्ये समुत्थाय कृतशौचः समाहितः ॥
स्नात्वा संध्यामुपासीत सर्वकालमतंद्रितः ॥२॥

प्रातःकाल ही उठकर शौचादि कार्य से निश्चिन्त होकर सदा आलस्यरहित स्नानकर संध्योपासन करे ॥२॥

अज्ञानाद्यदि वा मोहाद्रात्रौ यद्यरितं कृतम् ॥
प्रातःस्नानेन तत्सर्व शोधयंति द्विजोत्तमाः ॥ ३ ॥

मोह से अथवा अज्ञान से जो पाप रात्रि में कियाहै उसको प्रातःकाल स्नान करने से ब्राह्मणों में उत्तम मनुष्य दूर करते हैं ॥३॥

प्रविश्याथाग्निहोत्रं तु हुत्वाग्नि विधिवत्ततः ॥
शुचौ देशे समासीनः स्वाध्यायं शक्तितोऽभ्यसेत् ॥ ४ ॥

फिर अग्निशाला में जाकर विधिसहित अग्निहोत्र कर शुद्ध देश में बैठकर शक्ति के अनुसार वेद को पढना चाहिए ॥४॥

स्वाध्यायान्ते समुत्थाय स्नानं कृत्वा तु मंत्रवत् ॥

दे वानृषीन्पितश्चापि तर्पयेत्तिलवारिणा ॥ ५ ॥

वेद के पाठ कर चुकने के पीछे वेद का पढनेवाला ब्राह्मण स्नान करके तिल और जल से देवता ऋषि पितर इनका तर्पण करै ॥५॥

मध्याह्ने त्वथ संप्राप्ते शिष्टं भुजीत वाग्यतः॥
भुक्तोपविष्टो विश्रांतो ब्रह्म किंचिद्विचारयेत् ॥६॥

फिर मध्याह्न समयके आने पर शिष्ट अर्थात बलिवैश्वदेव से बचा हुए अन्न को मौन धारण कर -भोजन करे, भोजन करने के उपरान्त कुछ विश्राम करके ब्रह्म का विचार करना चाहिए ॥६॥

इतिहासं प्रयुंजीत त्रिकालसमये गृही ॥
काले चतुर्थे संप्राप्ते गृहे वा यदि वा वहिः ॥ ७ ॥

दिन के तीसरे भाग में इतिहास अर्थात महाभारत आदि का भी विचार करे, और संध्या होने पर घरमें अथवा बाहर ॥७॥

आसीनः पश्चिमा संध्यां गायत्रीं शतो जपेत् ।
हुत्वा चा थाग्निहोत्रं तु कृत्वा चाग्निपरिक्रियाम् ॥ ८॥

पश्चिम दिशाके सन्मुख बैठकर संध्योपासन करे; और यथा शक्ति गायत्री का जप करे , इसके पश्च्यात अग्निहोत्र और अग्नि की प्रदक्षिणा करनी चाहिए ॥ ८॥

बलिं च विधिवद्दत्त्वा भुंजीत विधिपूर्वकम् ॥
दिवा वा यदि वा रात्रौ अतिथिस्त्वाबजेद्यदि ॥ ९ ॥

और विधि सहित वलिवैश्वदेव करके विधिपूर्वक भोजन करन चाहिए, यदि दिन के समय अथवा रात्रि के समय कोई अतिथि आ जाय तो ॥९॥

तृणभूपारिवाग्भिस्तु पूजयेत्तं यथाविधि ॥
कथाभिः प्रीतिमाहृत्य विद्यादीनि विचारयेत् ॥ १० ॥

आसन भूमि, जल, वाणीसे उसका भली भाँति से आदर सत्कार कर के, आने जाने की कथा से उसको सन्तुष्ट करके विद्याआदि का विचार करना चाहिए ॥१०॥

संनिवेश्याथ विप्रं तु संविशेत्तदनुज्ञया ॥
यदि योगी तु संप्राप्तो भिक्षार्थी समुपस्थितः ॥११॥

पहले अतिथि को शयन कराकर और तत्श्च्यात उसकी आज्ञा लेकर अपने आप शयन करे यदि भिक्षा के लिये योगी आ जाए तो उसके सन्मुख बैठकर ॥११॥

योगिनं पूजयेन्नित्यम न्यथा किल्बिपी भवेत् ॥
पुरे वा यदि वा ग्रामे योगी सन्निहितो भवेत् ॥१२॥

योगी का नित्य पूजन करना चाहिए, ऐसा नहीं करने वाला पाप का भागी होता है, पुर में अथवा गाँव यदि योगी आ जाए ॥२॥

पूज्या नित्यं भवत्येव सर्वे चैव निवासिनः ॥
तस्मात्संपूजयेन्नित्यं योगिनं गृहभागतम् ॥ १३ ॥

तो उस योगी के आने से वहां के सभी निवासी पूजने योग्य होते हैं, इस कारण जो योगी घर में
आए तो उसका नित्य पूजन करना चाहिए ॥१३ ॥

तस्मिन्प्रयुक्ता पूजा या साक्षयायोपकल्पते ।।
गृहमेधिनां यत्प्रोक्तं स्वर्गसाधनमुत्तमम् ॥ १४ ॥

उसकी की हुई पूजा अविनाशी सुख देने वाली होती है, गृहस्थियों का उत्तम स्वर्ग का साधन जो कर्म है वह कर्म मैं तुमसे कहता हूँ ॥ १४ ॥

ब्राह्म मुहूर्त उत्थाय तत्सर्व सम्यगाचरेत् ॥
चतुःप्रकारं भियंते गृहिणो धर्मसाधकाः ॥१५॥

ब्राह्म मुहूर्त में उठकर उस पूर्वोक्त सम्पूर्ण कर्म का भली प्रकार से आचरण करे, धर्म के सिद्ध करनेवाले गृहस्थी चार प्रकारके भिन्न भिन्न होते हैं।॥१५॥

वृत्तिभेदेन सततं ज्यायांस्तेषां परः परः ॥
कुसूलधान्यको वा स्याकुंभीधान्यक एव वा ॥१६॥

अपनी जीविका के भेद से उनमें उत्तरोत्तर श्रेष्ठ होता है, पहला कुशूलधान्य अर्थात कोठे में तीन वर्ष तक निर्वाह हो जाए इतने अन्न को जो रक्खे, दूसरा कुंभीधान्यक अर्थात एक वर्ष तक निर्वाह होने के लिये कुंडों में जो अन्न को रक्खे ॥१६॥

त्रयहैहिको वापि भवेत्सद्यःप्रक्षालकोपि वा ॥

श्रोतं स्मात च यत्किंचिद्विधानं धर्मसाधनम् ॥ १७ ॥

तीसरा त्र्यहैहिक अर्थात जो तीन दिन तक निर्वाह के योग्य अन्न को रक्खें और चौथा सद्यःप्रक्षालक अर्थात जो केवल उसी दिन के उपभोग लायक अन्न एकत्रित करे। वेद अथवा स्मृतियों में कहा हुआ जो धर्म का साधन कर्म है ॥१७॥

गृहे तद्वसता कार्यमन्यथा दोषभाग्भवेत् ।
एवं विप्रो गृहस्थस्तु शांतः शुक्लांवरः शुचिः ॥ १८ ॥

घर में रहने वाले मनुष्य को वह समस्त करना चाहिये, कारण कि, न करनेवाला दोष का भागी होता है, इस प्रकार से शांत स्वभाव श्वेत वस्त्रों वाला शुद्ध, गृहस्थी ब्राझण ॥१८॥

प्रजापतेः परं स्थान सम्पामोति न संशयः ॥ १९ ॥

ब्रह्मा के उत्तम स्थान को प्राप्त होताहै; इसमें संदेह नहीं है ॥१९॥

इति वैष्णवधर्मशास्त्रे द्वितीयो ऽध्यायः ॥ २॥

वैष्णवधर्मशास्त्रे का द्वितीय अध्याय पूरा हुआ ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः तीसरा अध्याय

गृहस्थो ब्रह्मचारी वा वनवासं यदा चरेत् ।।
चीरवल्कलधारी स्यादकृष्टान्नाशनो मुनिः ॥१॥

गृहस्थी, अथवा ब्रह्मचारी जिस समय वन में निवास करे तब चीर अथवा वल्कल इनको धारण करे; और अकृष्टान्न अर्थात जो बिना जोते और बोये पैदा हो उस अन्न का भक्षण करे और मौन होकर रहे ॥१॥

गत्वा च विजनं स्थानं पंचयज्ञान हापयेत् ॥
अग्निहोत्रं च जुहुयादन्ननीवारकादिभिः ॥२॥

अथवा निर्जन स्थानमें जाकर भी पंच यज्ञों का परित्याग न करे; अन्न अथवा नीवार आर्थत पसाई के चावल आदि से अग्निहोत्र भी करे ॥२॥

श्रवणेनामिमाधाय ब्रह्मचारी वने स्थितः ॥
पंचयज्ञविधानेन यज्ञं कुर्यादतंद्रितः ॥३॥

और श्रावण के महीने में अग्नि का आधानकर ब्रह्मचारी वन में रहता हुआ पंचयज्ञकी विधि से आलस्यरहित होकर यज्ञ करे ॥ ३॥

संचितं तु यदारण्यं भक्तार्थं विधिवद्वने ॥
त्यजेदाश्वयुजे मासि वन्यमन्यत्समाहरेत् ॥४॥

जो अपने भोजन के लिये वन का अन्न इकट्ठा किया है उसको क्वार के महीने में दानकर दे, और नये वन के अन्न का संग्रहण करे ॥४॥

आकाशशायी वर्षासु हेमंते च जलाशयः ॥
ग्रीष्मे पंचाग्निमध्यस्थो भवेनित्यं वने वसन् ॥ ५ ॥

वर्षाऋतु में खुले ऊँचे स्थान में; सर्दियों में जल में शयन करे, ग्रीष्मऋतु में पंचाग्नि के मध्य में बैठकर वन में वास करता हुआ मनुष्य सर्वदा रहे ॥५॥

कृच्छ्रं चांदायणं चैव तुलापुरुषमेव च ॥
अतिकृच्छं प्रकुर्वीत त्यक्त्वा कामाञ्छविस्ततः ॥६॥

और कृच्छ्र, चांद्रायण, तुलापुरुष, अतिकृच्छ, इन व्रतों को निष्काम होकर शुद्धता से करे ॥६॥

त्रिसंध्यं स्नानमातिष्ठेत्सहिष्णुर्भूतजान्गुणान् ।
पूजयेदतिथींश्चैव ब्रह्मचारी वनं गतः ॥७॥

और पांचों भूतों के गुणों अर्थात शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध को सहता हुआ त्रिकाल स्नान करे; वन में प्राप्त हुआ ब्रह्मचारी पुरुष अतिथियों का पूजन करे ॥ ७॥

प्रतिग्रहं न गृहीयात्परेषां किंचिदात्मवान् ॥
दाताचैव भवेन्नित्यं श्रदधानः भियंवदः ॥८॥

और दान किसीसे न ले केवल आत्मा को ही जानता रहे, श्रद्धावान् और प्रियभाषी होकर प्रतिदिन यथाशक्ति दान दे ॥८॥

रात्रौ स्थण्डिलशायी स्यात्प्रपदैस्तु दिनं क्षिपेत् ॥
वीरासनेन तिष्टेद्वा क्लेशमात्मन्यचिंतयन् ॥९॥

रात्रि में स्वयं बनाये चबूतरेपर शयन करें और पैरो से चलते हुए सारा दिन व्यतीत करे अथवा अपने मन में किंचित् भी क्लेश न करता हुआ वीरासन से बैठा रहे ॥९॥

केशरोमनखश्मशून्न छिंद्यानापि कर्तयेत् ॥
त्यजञ्छरीरसौहाई वनवासरतः शुचिः ॥१०॥

और केश, रोम, नख, दाढी इनको न कटवाए और न ही इनका छेदन करे। वनवास में तत्पर शुद्ध अपने शरीरकी प्रीति को छोड दे अर्थात् अपने शरीर से किंचित भी प्रेम न करें और अपने पूर्वोक्त कर्मा को करता रहे ॥१०॥

चतुःप्रकारं भियंते मुनयः शंसितव्रताः ॥
अनुष्ठानविशेषेण श्रेयांस्तेषां पर: परः ॥ ११॥

इस व्रतके करने वाले मुनि चार प्रकार के होतेहैं, यह व्रत अत्यंत कठिन है, अनुष्ठान की विशेषता से उनमें उत्तरोत्तर श्रेष्ठ होता है ॥ ११॥

वार्षिकं वन्यमाहारमाहत्य विधिपूर्वकम् ।
वनस्थधर्ममातिष्ठन्नयेत्कालं जितेन्द्रिय:॥१२॥

प्रथम साल भरके लिये विधिपूर्वक वन के आहार को संग्रह कर वानप्रस्थों के धर्म में स्थित आलस्यको छोड और इन्द्रियों को जीतकर जो समय को व्यतीत करता है ॥१२ ॥

भूरिसंवार्षिकश्चायं वनस्थः सर्वकर्मकृत् ॥
आदेहपतनं तिष्ठेन्मृत्युं चैव न कांक्षति ॥१३॥

इन सब कर्म के करनेवाले वानप्रस्थको भूरिसंवार्षिक कहते हैं । दूसरा - मरण काल तक वन में रहे; और मृत्यु की इच्छा भी न करे ॥१३ ॥

षण्मासांस्तु ततश्चान्यः पंचयज्ञक्रियापरः ॥
काले चतुर्थे भुंजानो देहं त्यजति धर्मतः ॥१४॥

और छह महीने तक के अन्नका संग्रह कर और पंचयज्ञ कर्म में तत्पर रहे चौथे काल (संध्या) में भोजन करता हुआ धर्म से शरीर को त्यागता है ॥१४॥

त्रिंशदिनार्थमाहत्य वन्यानानि शुचिव्रतः ॥
निर्वयं सर्वकार्याणि स्थाच पठेन्नभोजनः ॥ १५ ॥

तीसरा- एक महीनेअर्थात् तीस दिनके लिये शुद्धव्रत होकर वन के अन्न का संग्रह कर,सम्पूर्ण कर्मों को करके दिन के छठेभाग में भोजन ग्रहण करें ॥१५ ॥

दिनार्थमन्नमादाय पंचयज्ञक्रियारतः ॥

सद्याप्रक्षालको नाम चतुर्थः परिकीर्त्तितः ॥ १६ ॥

चौथा एक दिन के लिये अन्न का संग्रह करके पंचयज्ञ कर्म में तत्पर रहे यह सद्यःप्रक्षालक नामक चौथा कहा है ॥१६॥

एवमेते हि वैमान्या मुनयः शंसितव्रताः ॥ १७॥

इस प्रकार से चारों मुनि कठिन प्रत करने वाले पूजनीय होते हैं ॥१७॥

इति वैष्णवे धर्मशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

वैष्णवधर्मशास्त्र का तीसरा अध्याय सम्पूर्ण हुआ

`चतुर्थोऽध्यायः चौथा अध्याय

यथोत्तमानि स्थानानि प्रामुवंति हटवताः॥
ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थो यतिस्तथा ॥ १ ॥

जिस प्रकारसे गृहस्थ, वानप्रस्थ, ब्रह्मचारी और यति यह चारों दृढव्रत करनेवाले उत्तम स्थान (ब्रह्मलोक) को प्राप्त होते हैं वह यह है कि ॥१॥

विरक्तः सर्वकामेषु पारिवाज्यं समश्रियेत् ॥
आत्मन्यमीन्स रोप्य दवा चाभयदक्षिणाम् ॥ २॥

सब कामनाओं से विरक्त होकर संन्यास को ग्रहण कर अपनी आत्मा में ही अग्नियों को मान कर स्त्री आदिकों को अभयदक्षिणा देकर अर्थात त्याग कर ॥२॥

चतुर्थमाश्रमं गच्छेद्ब्राह्मणः प्रव्रजन्गृहात् ॥
आचार्येण समादिष्टं लिंग यत्नात्समाश्रयेत् ॥ ३ ॥

ब्राह्मण घर से चलकर चौथे आश्रम में गमन करे, आचार्यके बताये हुए चिन्हों को सावधान होकर धारण करे ॥३॥

शौचमाश्रयसम्बन्धं यतिधर्माश्च शि क्षयेत् ॥
अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यमफल्गुता ॥ ४॥

संन्यास आश्रम के धर्मों को सीखे, शौच और संन्यासियों के धर्मो को सीखता रहे, अहिंसा, सत्य, चोरी को छोड देना, ब्रह्मचर्य, अफल्गुता अर्थात निरर्थकपन का त्याग ॥४॥

दयां व सर्वभूतेषु नित्यमेतद्यति श्चरेत् ॥
ग्रामाते वृक्षमूले च नित्यकालनिकेतनः ॥ ५॥

समस्त प्राणियों पर दया करना, यति इतने कर्मों को नित्यप्रति अवश्य करे और ग्राम के निकट किसी वृक्ष के नीचे सदा अपना स्थान बनाकर रात भर रहै ॥५॥

पर्यटेकीटवभूमि वर्षा स्खेकत्र संविशेत् ॥
वृद्धानामातुराणां च भीरूणां संगवर्जितः ॥ ६ ॥

वर्षाऋतु में एक स्थान पर बैठा रहै, और कीड़े की समान पृथ्वी पर भ्रमण करे, वृद्ध, रोगी, भयानक इनकी संगति न करे ॥६॥

ग्रामे वापि पुरे वापि वासो नैकत्र दुष्यति ॥
कौपीनाच्छादनं वासः कथां शीताप हारिणीम् ॥७॥

वर्षाकालके समय ग्राम में अथवा नगरमें जो यति एक स्थान पर रहता है वह दूषित नहीं होता; कौपीन ओढने का वस्त्र जिससे कि सरदी न लगे, ऐसी ही कंथा (गुदडी) ॥७॥

पादुके चापि गृहीयात्कुर्यान्नान्यस्य संग्रहम् ॥
संभाषणं सह स्त्रीभिरालंभप्रेक्षणे तथा ॥ ८॥

और खडाऊं इनको ग्रहण करे, और इनके अलावा कुछ भी संग्रहण न करे, स्त्रियों का स्पर्श और उनके साथ वार्तालाप तथा देखना ॥८॥

नृत्यं गानं सभा सेवां परिवादांश्च वर्ज येत् ॥
वानप्रस्थगृहस्थाभ्यां प्रीति यत्नेन वर्जयेत् ॥ ९॥

नाच, गान, सभा, सेवा, नौकरी, निन्दा, इनको छोड दे, वानप्रस्थ और गृहस्थी इनका संग भी यत्नसहित त्याग दे ॥९॥

एकाकी विचरेन्नित्यं त्यक्त्वा सर्वपरिग्रहम् ॥
याचितायाचिताभ्यां तु भिक्षया कल्पयेत्स्थितिम् ॥ १० ॥

सम्पूर्ण परिग्रह त्यागकर केवल अकेला भ्रमण करै; मांगे था बिना मांगे से ही जो मिल जाय उसी भिक्षा से अपना निर्वाह करै ॥१०॥

साधुकारं याचितं स्यात्माप्रणीतमयाचितम् ॥
चतुर्विधा भिक्षुकाः स्युः कुटीचकर दकौ ॥ ११ ॥

हंसः परमहंसश्च पश्चायो यः स उत्तमः॥
एकदंडी भवेदापि त्रिदंडी वापि वा भवेत् ॥१२॥

अच्छा कहकर लेने वाले को याचित, बिना मांगे जो मिले उसे अयाचित, कहते हैं; यह संन्यासी चार प्रकारके होते हैं १ कुटीचक, २ वहूदक ३ हंस, ४ परमहंस इनमें जो २ पिछला है वही वही उत्तम है एक दंड को धारण कर या तीन दंड को॥११-१२॥

त्यक्त्वा सर्वसुखास्ववादं पुत्रैश्वर्यसुखं त्यजेत् ॥
अपत्येपु वसेन्नित्यं ममत्वं यत्नतस्त्यजेत् ॥१३॥

सम्पूर्ण सुखों के स्वाद को छोडकर पुत्र के ऐश्वर्य के सुख को त्याग दे; अपने पुत्रों में ही नित्य निवास करे, और यत्न पूर्वक ममता को त्या दे ॥१३॥

ना न्यस्य गैहे भुंजीत झुंजानो दोषभाग्भवेत्॥
कामं क्रोधं च लोभं च तयेष्यासत्यमे व च ॥ १४ ॥

दूसरे के घर में भोजन न करे, जो परायें घर में भोजन करता है वह दोष का भागी होता है और काम क्रोध, लोभ, ईर्ष्या, झुठ, इन सबको ॥१४॥

कुटीचकस्त्यजेत्सर्वं पुत्रार्थ चैव सर्वतः ॥
भिक्षाटनादिकशक्तो यतिः पुत्रपु संन्यसेत् ॥ १५॥

कुटीचक आगंद त्याग दे और समस्त वस्तु जो कि संचित की है पुत्र ले लिए छोड दे; अपने आप भिक्षाटनदि में असमर्थ होकर सन्यासी अपने पुत्रो को ही देह को सौंप दे ॥१५॥

कुटीचक इति ज्ञेयः परिव्राट् त्यत्तबांधवः ।।
त्रिदंडं कुंडिका चव भिक्षापार तथैव च ॥ १६ ॥

सूत्र तथैव गृहीयानित्यमेव बहूदकः॥
प्राणायामेऽप्यभिरतो गायत्री सततं जपेत् ॥ १७ ॥

इस संन्यासीको कुटीचक कहते हैं, दूसरा बंधु जिसने अपने त्याग दिये हैं ऐसा संन्यासी त्रिदंड, कुंडी, भिक्षा का पात्र और यज्ञोपवीत इनको बहूदक नित्य ग्रहण करे, प्राणायाम में तत्पर रह और निरन्तर गायत्री का जप करता रहे ॥१६-१७॥

विश्वरूपं हदि ध्यायनयेत्कालं जितेंद्रियः ॥
ईपरकृतकपायस्प लिंगमाश्रित्य तिष्ठतः॥१८॥

हृदय में भगवान् का ध्यान कर इंद्रियों को जीतकर समय बिताता रहे, कुछ वस्त्रों को गेरुवा रंगकर एक चिन्ह अर्थात संन्यास की पहचान बनाकर स्थित हुए संन्यासी का ॥१८॥

अन्नार्थ लिंगमुद्दिष्टं न मोक्षार्थमिति स्थितिः ॥
त्यक्त्वा पुत्रादिकं सर्व योगमार्ग व्यवस्थितः ॥१९॥

चिह्न अन्न के निमित्त कहा है, मोक्षके लिये नहीं कहा, ऐसी मर्यादा है। तीसरे इसमें सम्पूर्ण पुत्रादिकों को त्याग कर और योग मार्ग में स्थित रहकर ॥१९॥

इंद्रियाणि मनश्चैव कर्पन्हंसोऽभिधीयते ॥
कृच्द्रश्चान्द्रायणैश्चैव तुलापुरुषसंज्ञकैः ॥ २० ॥

अन्यैश्च शोषयेदेहमाकांक्षन्ब्रह्मणः पदम् ॥
यज्ञोपवीतं दंडं च वस्त्रं जंतुनिवारणम् ॥२१॥

जो इन्द्रिय और मन को वश में करता है उस संन्यासी को हंस कहते हैं । कृच्छ्रचांद्रायण, तुलापुरुष और इतर व्रतो से ब्रह्मपद की इच्छा करता हुआ सन्यासी अपने शरीर को सुखादे, यज्ञोपवीत, दंड, और जिससे मक्खी आदि जीव शरीरपर न गिर ऐसा वस्त्र ॥२०-२१॥

अयं परिग्रहो नान्यो हंसस्य श्रुतिवेदिनः ॥
आध्यात्मिकं ब्रह्म जपन्प्राणायामांस्तथाचरन् ॥२२॥

वेद के ज्ञाता हंस को यही परिग्रह है, इससे अलग नहीं है। चौथा अपनी आत्मा में व्यापक ब्रह्म को जपता और प्राणायामों को करता हुआ ॥२२॥

वियुक्तः सर्वसंगेभ्यो योगी नित्यं चरेन्महीम् ॥
आत्मनिष्ठः स्वयं युक्तस्त्यक्तसर्वपरिग्रहः ॥ २३ ॥

सव संगोंसे रहित और आत्मा में स्थित, और जिसने युक्त होकर गृहआदिकों को त्याग दियाहै, वह नित्य पृथ्वी पर विचरण करै ॥२३॥

चतुर्थोऽयं महानेषां ध्यानभि रुदाहृतः॥
त्रिदंडं कुंडिकां चैवं सूत्रं चाथ कपालिकाम् ॥२४॥

यह चौथा इन चारों में बड़ा और ज्ञानभिक्षु (परमहंस) को कहा है, त्रिदंड, कुंडी, यज्ञोपवीत, भिक्षा का पात्र ॥२४॥

जंतूनां वारणं वस्त्रं सर्वे भिक्षरिदं त्यजेत् ॥

कौपीनाच्छादनार्थं च वासोऽधश्च परिग्रहेत् ॥२५॥

जंतुओं का निवारण करने योग्य वस्त्र इन सबको भिभुक त्याग दे, कौपीन ओढने का वस्त्र, केवल इनको ही धारण ॥२५॥

कुर्यात्परमहंसस्तु दंडमेकं च धारयेत् ॥
मात्मन्येवात्मना बुद्ध्या परित्यक्तशुभाशुभः ॥२६॥

परमहंस करे, और एक दंड का धारण करें; और अपनी बुद्धि से सम्पूर्ण शुभाशुभ कर्मो का त्याग कर दे ॥२६॥

अव्यक्तलिंगो ऽव्यक्तश्च चरेद्भिक्षुः समाहितः॥
प्राप्तपूजो न संतुष्येदलामे त्यक्तमत्सरः॥२७॥

अपने चिन्हों को छिपाकर और अप्रकट होकर सावधान हुआ विचरण करे; पूजा की प्राप्ति से प्रसन्न नहीं हो और जो पूजा न हो तो क्रोध भी नहीं करे ॥२७॥

त्यक्ततृष्णः सदा विद्वान्मूकवत्पृथिवीं चरेत् ॥
देहसंरक्षणार्थं तु भिक्षामीहेद्विजातिषु ॥२८॥

तृष्णा को त्यागकर गूंगे के समान मौन धारण कर पृथ्वी में भ्रमण करे; और केवल देह की रक्षा के निमित्त ही भिक्षा को द्विजातियों अर्थात ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, इन तीन जातियों के घर से मांगे ॥२८॥

पात्रमस्य भवेत्पाणिस्तेन नित्यं गृहानटेत् ॥

अतैजसानि पात्राणि भिक्षार्थं कृप्तवान्मनुः ॥ २९ ॥

भिक्षुक का पात्र हाथ ही है उसी से नित्य गृहों में, भिक्षा मांगने के लिए, विचरण करे। और मनुजी ने भिक्षा के लिये बिना धातु, तांबा आदि के पात्र रचे हैं ॥ २९ ॥

सर्वेषामेव भिक्षूणां दार्वलातुमयानि च ॥
कांस्यपात्रे न झुंजीत आपद्यपि कथंचन ॥ ३० ॥

सम्पूर्णः भिक्षुकों को, काष्ठ, तांबा आदि के पात्र कहे हैं। विपत्ति आने पर भी कांसे के पात्रों में भोजन नहीं करना चाहिए ॥३०॥

मलाशाः सर्व उच्यते यतयः कांस्यभोजिनः ॥
कांसिकस्य तु यत्पापं गृहस्थस्य तथैव च ॥ ३१ ॥

जो यति कांसे के पात्र में भोजन करते हैं, उन्हें विष्ठा का खानेवाला कहा है; कांसे के पात्र बनाने वाले को और उसमें भोजन करने वाले गृहस्थ को जो पाप होताहै ॥३१॥

कांस्यभोजी यतिः सर्व तयोः प्राप्नोति किल्विषम् ॥
ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थो यतिस्तथा ॥ ३२ ॥

उन दोनों का वह पाप कांसे के पात्रमें भोजन करनेवाले संन्यासी को प्राप्त होता है। जो ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी ॥ ३२॥

उत्तमा वृत्तिमाश्रित्य पुन रावर्तयेद्यदि ॥

आरूढपतितो ज्ञेयः सर्वधर्मबहिष्कृतः ॥ ३३ ॥

उत्तम आचरणको स्वीकार कर फिर उसका त्याग करता है, उस आरूढ़ पतित जानना चाहिए और वह समस्त धर्मों से बहिष्कृत है ॥३३॥

निधश्च सर्व देवानां पितृणां च तयोच्यते ॥
त्रिदंडं लिंगमाश्रित्य जीवंति बहवों द्विजाः ॥३४॥

और वह सब देवता और पितरोंमें निद्रित कहाता है। त्रिदंड (संन्यास) के आश्रयसे बहुतसे द्विज जीवन करते हैं ॥३४॥

न तेषामपवर्गोऽस्ति लिंगमात्रीपजीविनाम् ॥
त्यक्त्वा लोशांश्च वेदांश्च विषयानिन्द्रियाणि च ॥ ३५ ॥

आत्मन्यव स्थितो यस्तु प्रामोति परमं पदम् ।। ३६ ॥

लिंग मात्र से ही जीवन धारण करनेवाले को मोक्ष नहीं मिलता और जो लोक, वेद, विषय, इन्द्रिय, इनको त्यागकर, आत्मा के विषय में ही स्थित रहता है, वह परमपद को प्राप्त होता है ॥३५- ३६॥

इति वैष्णवे धर्मशास्त्र चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पंचमोऽध्यायः पांचवां अध्याय

राज्ञां तु पुण्यवृत्तानां त्रिवर्गपरिकांक्षिणाम् ॥
वक्ष्यमाणस्तु यो धर्मस्तत्वतस्तनिवोधत ॥ १॥

पवित्र आचरण वाले धर्म अर्थ काम के अभिलापी राजाओं का जो धर्म है इसको मैं कहता हूँ, तुम श्रवण करो ॥१॥

तेजः सत्यं धृतिर्दाक्ष्यं संग्रामेष्वनिवर्तिता ॥
दानमीवरभावश्च क्षत्रधर्मः प्रकीर्तितः ॥ २॥

तेज, सत्य, धैर्य, दक्षता, संग्राम में न भागना, दान, ईश्वरता, यथार्थ न्याय करना यह क्षत्रियों का धर्म कहा है ॥२॥

क्षत्रियस्प परो धर्मः प्रजानां परिपालनम् ॥
तस्मात्मई प्रयत्नेन रक्षयेन्नृपतिः प्रजाः ॥ ३ ॥

प्रजाओं का पालन करना क्षत्रियों का परम धर्म है, इस कारण यत्न पूर्वक राजा को प्रजाओं की रक्षा करनी चाहिए ॥३॥

त्रीणि कर्माणि कुर्वीत राजन्यस्तु प्रयत्नतः ॥
दानमध्ययनं यज्ञं ततो योगनिषेवणम् ॥४॥

क्षत्रिय को यत्नपूर्वक, तीनों कर्मों को करना चाहिए, दान, पढना, वन, और फिर योगमार्ग का सेवन ॥४॥

ब्राह्मणानां च संतुष्टिमाचरेत्सततं तथा ॥
तेष तुष्टेषु नियतं राज्य कोशश्च वर्धते ॥५॥

सर्वदा ब्राह्मणोंको संतोष देनेवाला आचरण करता है, उनके प्रसन्न होने पर राजाओं के राज्य और उनके खजाने की वृद्धि होती है क्षत्रियों ॥५॥

वाणिज्यं कर्षणं चैव गवां च परिपालनम् ॥
ब्राह्मणक्षत्रसेवा च वैश्यकर्म प्रकीर्तितम् ॥६॥

व्यवहार, कृषि, गौओं को पालना, ब्राह्मण और क्षत्रियों की सेवा यह तीन कर्म वैश्य के लिये कहे हैं ॥६॥

खलयज्ञ कृषीणां च गोयज्ञं चैव यलतः ॥
कुर्यादैश्यश्च सततं गवां च शरणं तथा ॥७॥

और कृषि के खलियान के यज्ञ और गौओं के यज्ञ को गौओं के शरण रह कर वैश्य सर्वदा करै ॥ ७ ॥

ब्राह्मणक्षत्रवैश्यांश्च चरेनित्यममत्सरः ॥
कुर्वस्तु शूदः शुश्रूषां लोकाञ्जयति धर्मतः ॥८॥

शूद्र ईर्षाको त्याग कर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, इनकी सर्वदा सेवा करे कयोंकि इनकी शुश्रूषा धर्मसहित करनेवाला शूद्र स्वर्गलोक को भी जीत लेता है ॥८॥

पंचयज्ञविधानं तु शूद्रस्यापि विधीयते ॥

तस्य प्रोक्तो नम स्कारः कुर्वन्नित्यं न हीयते ॥ ९॥

शूद्रों के लिए भी पंच यज्ञ करने का विधान है; उसको भी परस्पर में नमस्कार करना कहा है; इससे अन्यों में सर्वदा नमस्कार शब्द से व्यवहार करता हुआ शूद्र पतित नहीं होता ॥९॥

शूद्रोपि द्विविधो ज्ञेयः श्राद्धी चैवेतरस्तथा ॥
श्रादी भोज्यस्तयोरुतो भो ज्यस्त्वितरो मतः ॥ १०॥

शूद्र दो प्रकारके हैं एक श्राद्धका अधिकारी और दूसरा अनधिकारी, उन दोनों से श्राद्ध के अधिकारी का अन्न लेना, भोजन करना उचित है और अनधिकारी को नहीं ॥१०॥

प्राणान तथा दारान्बाह्मणार्थ निवेदयेत् ॥
स शूद्रजाति ज्यः स्यादभोज्यः शेप उच्यते ॥ ११ ॥

जो शूद्र, अपनी स्त्री, धन, प्राण इनको ब्राह्मण की सेवा में समर्पण करदे, उस शूद्र का अन्न भोजन करने योग्य है, और शेष शूद्र का अन्न भोजन करने योग्य नहीं है ॥११॥

कुर्याच्छूद्रस्तु शुरुषां ब्रह्मक्षत्रविशां क्रमात् ॥
कुर्यादुत्तरयोर्वैश्यः क्षत्रियो ब्राह्मणस्य तु ॥१२॥

शूद्र को क्रम से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, इनकी सेवा करनी चाहिए, वैश्य को ब्राह्मण, क्षत्रिय, इनकी सेवा करनी चाहिए और क्षत्रिय को केवल ब्राह्मण की ही सेवा करनी चाहिए ॥१२॥

आश्रमास्तु त्रयः प्रोक्ता वैश्यराजन्ययोस्तथा ॥
पारिव्राज्याश्रमप्राप्तिाह्मणस्यैव चोदिता ॥१३॥

वैश्य और क्षत्रिय, इनको तीन आश्रम कहेहैं, अर्थात् ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और वानप्रस्थ और संन्यास आश्रमकी प्राप्ति तो केवल ब्राह्मण को ही कही है ॥१३॥

आश्रमाणामयं प्रोक्तो मया धर्मः सनातनः ॥
यदत्राविदितं किंचित्तदन्येभ्यो गमिष्यथ ॥१४॥

यह चारों आश्रमों का सनातन धर्म मैंने तुमसे कहा; इसमें जो कुछ जानना तुमको शेप रहा है उसको तुम विभिन्न ग्रंथों से जान जाओंगे ॥१४॥

इति वैष्णवधर्मशास्त्रे पंचमोऽध्यायः ॥ ५॥

विष्णुस्मृतिः समाप्ता ॥२॥